मोहलिन (स्विटजरलैंड)
अप्रैल २५, २००२

सन्देश संख्या ४८
आद्योपान्त ध्यान

प्रयत्न शैथिल्य अवस्था में छोड़कर निम्नलिखित पर ध्यान करें :–

१. अनासक्त अनुराग ।
२. कममुक्त कौशल।
३. बन्धनमुक्त विश्वास ।
४. द्वन्द्वरहित जागरूकता।
५. निष्कषरहित स्पष्टता।
६. विकल्परहित आनन्द ।
७. धर्मान्धताविहीन देवत्व ।
८. चुनावरहित सहनशीलता ।
९. मोहविहीन दृढ़ता ।
१०. दोषमुक्त स्वतंत्रता ।
११. उद्देश्यविहीन त्याग ।
१२. निश्छल पवित्रता ।
१३. अप्रभावित निष्पक्षता ।
१४. छविरहित अन्तर्दृष्टि ।
१५. शब्दाडम्बरमुक्त सच्चाई ।
१६. सूचनारहित समझदारी ।
१७. वासनाविहीन प्रेम ।
१८. चित्तवृत्तिरहित सतर्कता ।
१९. धारणारहित नवीनता ।
२०. द्रष्टारहित दर्शन।
२१. पीछे पड़ जाने की प्रवृत्ति से मुक्त दृढ़ संकल्प ।
२२. प्रश्नरहित जिज्ञासा ।
२३. प्रतिक्रियारहित उत्तर ।
२४. निःस्वार्थ अर्पण ।
२५. अटूट सत्यनिष्ठा ।
२६. व्यावहारिक समझदारी ।
२७. निरभिमान सत्यनिष्ठा ।
२८. चिन्तामुक्त चौकसी ।
२९. अनुभवरहित अस्तित्व ।
३०. आत्मरहित आकांक्षा ।
३१. लगावविहीन उत्साह ।
३२. सही स्थान पर सीधी चाल ।

मन के द्वन्द्व और उत्तेजना से छुटकारा पाने के लिए आध्यात्मिक मण्डी के सौदागरों के द्वारा ध्यान के बहुत से तरीके बताये गये हैं। ये उपलब्धि और प्रवीणता की लालसा पर आधारित हैं। दूसरे शब्दों में, इसे जीवन में महत्वपूर्ण मुकाम पर पहुँचने एवं सफल होने के लिये किया जाने वाला संघर्ष कहा जा सकता है। ध्यान के लिए जानबूझकर किया गया प्रयास वास्तव में ध्यानशील ऊर्जा के अस्तित्व को नकारना है। स्वतःस्फूर्त ध्यान रूपान्तरण है – शरीर की रासायनिक संरचना में परिवर्तन, गुणातीत। वह ध्यान तो अवस्था है जो लालन–पालन, शिक्षा–दीक्षा एवं सामाजिक उत्तरदायित्व के नाम पर सृजित बन्धनों को पूर्ण रूप से नकार देती है। इसे ही 'सर्वारम्भ परित्यागी' की अवस्था कहते हैं। ध्यान में मन एवम् उसके समस्त उन्माद, उपद्रव, व्याधि और बुराइयाँ पूर्ण रूप से स्वतः समाप्त हो जाती हैं। इसके लिए किसी प्रयास की आवश्यकता नहीं पड़ती है। प्रयास अहंकार का पोषक है और इसलिए बन्धनकारी है, मुक्ति की अवस्था नहीं। ध्यान करने के समस्त

उद्यम और प्रयत्न अनुबन्धित मन (चित्तवृत्ति) तथा सांस्कृतिक, पैतृक एवं पारम्परिक निवेशों की सीमा के अन्तर्गत ही होते हैं। ध्यान के लिए समस्त प्रयास उलझन एवं भ्रम को बढ़ाने वाले होते हैं। उन्मुक्तता (स्वतंत्रता) अर्थात् विचार की उन्मुक्तता, मनन एवं चिन्तन की उन्मुक्तता और विचारों तथा विकल्पों को एक–एक कर छाँटने की स्वतंत्रता ध्यान के प्रवेशद्वार हैं, ध्यान समय की स्थिरता (समय शून्यता) का एक बिल्कुल अलग आयाम है।

कोई ऐसा नहीं, वास्तव में कोई भी ऐसा नहीं है जो ध्यान सिखा सके, चाहे उसकी दाढ़ी और बाल कितने ही लम्बे क्यों न हों, उसकी वेशभूषा कितनी ही विलक्षण क्यों न हो या वह दिगम्बर ही क्यों न बन गया हो, उसके मालों के रुद्राक्ष, स्फटिक या अन्य रत्नों का भार कितना ही अधिक क्यों न हो, उसके ताबीज़ और अन्य पहचान चिन्ह कितने ही अनोखे क्यों न हों। ध्यानावस्था को स्वयं देखें, समझें और इस पर स्थिर रहें। इसके लिए किसी और पर निर्भर न करें।

ध्यान क्या है इसकी छानबीन ही अपने आप में महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके द्वारा व्यक्ति स्वयम् अपना पथ–प्रदर्शक बन जाता है। क्रिया का अभ्यास किया जाता है किन्तु ध्यान होता है। ध्यान = प्रेम + मृत्यु। अस्तित्व से प्रेम और अहंकार की मृत्यु। ध्यान शांतिप्राप्ति या समस्याओं के समाधान के लिए कोई विश्लेषण या कार्य–कलाप नहीं है। यह मन के समस्त उन्मादों और व्याधियों द्वारा सृजित समस्याओं के प्रति जागरूकता और सतर्कता है ताकि अस्तित्व के प्रत्येक (व्यक्ति, परिवार, समाज, रा्र और विश्व) स्तर पर शांति बनी रहे। प्रार्थना विरोधाभास, खोज एवं प्रचार की संस्कृति को प्रोत्साहित करती है और मन (चित्तवृत्ति) के द्वारा कल्पित धर्म को जन्म देती है। ऐसे धर्म मनुष्य को धर्म के नाम पर परस्पर मरने–मारने के लिए प्रेरित करते हैं।

जब कोई कठोर और शक्तिशाली शासक हत्या करता है तब यह धर्मयुद्ध कहलाता है और जब एक प्रतिक्रियावादी समूह हत्या करता है तब इसे आतंकवाद कहा जाता है। यदि मनुष्य 'सत्–चित्–आनन्द' की अवस्था में रहे अर्थात् 'निर्मन' के धर्म का पालन करे तो मारने मरने की इस विभीषिका को टाला जा सकता है और तब यह धरती ही स्वर्ग बन जाएगी।

क्या आप अपनी क्षीण या बलवान इच्छाओं पर ध्यान दे सकते हैं? जब आप इन पर ध्यान देंगे तब पायेंगे कि वासनाओं के दमन, विकृतिकरण, पोषण, तोषण, उलझन इत्यादि से आप अपने को क्षति पहुँचाते हैं। अपनी वासनाओं के बारे में सहज ढंग से दृढ़तापूर्वक निष्क्रिय बने रहें। समझदारी से युक्त यह निष्क्रियता एक पूर्ण, अखंडित एवं रूपान्तरित चैतन्य को जन्म देता है। यही निर्मन है, यही सच्चिदानन्द है और यही ध्यान है। गीता ने भी इस उक्ति से इसकी पुष्टि की है :–

''कमण्यकम यः पश्येदकमणि च कम यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकमकृत्।।''

जो कर्म में अकर्म तथा अकर्म में कर्म देखता है वही मनुष्यों में बुद्धिमान है क्योंकि वह पूर्ण कर्म से जुड़ा हुआ है।

क्रियावानों को ये मौलिक बातें अपनी अन्तर्मुखी यात्रा (स्वाध्याय) के माध्यम से समझनी चाहिए न कि दूसरों का मूल्यांकन करके। उन्हें किसी छद्म एकान्तवासी, धूर्त, दुर्जन या प्रामाणिकता का स्वांग भरने वाले ढीठ एवं क्षुद्र मन वालों के बहकावे में नहीं आना चाहिए। क्रियावानों को क्रियायोग के विभिन्न रूपान्तरणों एवं संस्करणों यथा 'सही' क्रियायोग, 'गलत' क्रियायोग, 'मूल' क्रियायोग, 'संशोधित' क्रियायोग, 'बाबाजी' क्रियायोग तथा इस प्रकार के अन्य कचड़ों के पचड़े में नहीं पड़ना चाहिए। उन्हें इन सबकी चिन्ता कदापि नहीं करनी चाहिए कि किसकी जिह्वा ब्रह्मरन्ध्र में सटती है, किसने वासना पर कितनी विजय पा ली है, आदि–आदि। वास्तव में, ये सब आध्यात्मिक मण्डी में ईर्ष्या और प्रतिद्वन्द्विता को जन्म तथा पोषण देनेवाली अभद्रतायें हैं। एक क्षुद्रमन जब क्रियावान बनने की कोशिश कर रहा होता है तब वह इसकी ऊँचाइयों को घटाकर अपनी क्षुद्रता के स्तर पर ले आता है। जो क्रियावान इस प्रकार के अपरिपक्व और ओछी गतिविधियों में लिप्त हैं, वे क्रिया–ऊर्जा के शीर्ष स्रोत पूज्य एवं नित्य लाहिड़ी महाशय की कृपा और आशीर्वाद से वंचित हो रहे हैं। दिव्य कृष्ण ने गीता में इंगित किया है :–

''एकं सांख्यञ्च योगञ्च यः पश्यति सः पश्यति।'' कृपया इसे समझें, जिसका अभिप्राय है कि स्वाध्याय सबसे महत्वपूर्ण है। वे पुनः बताते हैं :–

''तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च'' अर्थात् ज्ञात से मुक्त होने के लिए उधारी ज्ञान से परे हो जायें। यही ध्यानशील जीवन है।

।। गोविन्द जय जय गोपाल जय जय ।।